कां... कां... कां.. कौआ

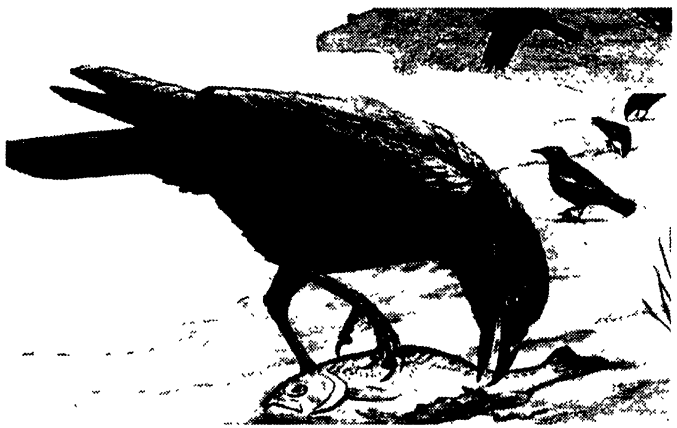

कौओं की ज़िंदगी पर शोध

माधव गाडगिल

प्रोजेक्ट लाइफस्केप हिन्दुस्तान में जीव विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों में जीवों के अध्यापन को बढ़ावा देने के लिए 1500 प्रजातियों व विशेष तौर पर पहचाने गए अन्य विस्तृत समूहों के अध्ययन की योजना है। अपने भड़कीले रंगों, मधुर आवाज़, अंगूठे के साइज़ की फूल सूंघनी से लेकर विशालकाय सारस और मनुष्य के जितने बड़े आकार वाले पक्षियों ने लोगों को हमेशा चकित किया है। यहां तक कि इनकी वजह से ही शायद मनुष्य की हवा पर सवार होने की इच्छा रही है। पक्षियों को अक्सर देवताओं

की सवारी का दर्जा दिया गया है और इस वजह से कइयों को संरक्षण दिया जाता है। परन्तु दूसरी ओर मांस व पंखों के लिए बड़े पैमाने पर उनका शिकार होता है, और मनोरंजन के लिए इन्हें पिंजरे में कैद करके रखा जाता है। इन पर इतना सारा ध्यान केन्द्रित होने की वजह से ही शायद समस्त प्राणियों में सबसे अधिक अध्ययन पक्षियों के बारे में ही किया गया है, और दुनिया के हर कोने में पक्षियों का अध्ययन करने वाले हज़ारों लोग मौजूद हैं।

इसलिए विद्यार्थियों को अपने आसपास की सृष्टि का अवलोकन करने और प्रकृति की किताब से अपने बल पर बहुत कुछ सीखने का एक आदर्श मौका पक्षियों के अवलोकन के ज़रिए मिल सकता है। विज्ञान के जो पेशेवर अध्ययेता नहीं हैं उन्हें भी पक्षियों के अध्ययन के माध्यम से वैज्ञानिक ज्ञान के भंडार में योगदान देने का अतुल्य मौका मिल जाता है। हमारे आसपास पाए जाने वाली पक्षी प्रजातियों में प्रचुर विविधता है। केवल भारतीय प्रायद्वीप में, जो धरती के क्षेत्रफल का महज 2 प्रतिशत है – 1237 पक्षी प्रजातियां पाई जाती हैं। ये पक्षी -प्रजातियों की कुल संख्या का 12.5 प्रतिशत है। किसी भी शिक्षण संस्थान के आसपास हम आसानी से 50 -60 प्रजातियां देख सकते हैं। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ सांइस, बैंगलोर परिसर में कुल 140 प्रजातियों की उपस्थिति दर्ज की गई है। इन सभी प्रजातियों में से हम यहां अपना ध्यान 'घरेलू कौओं' पर केन्द्रित करेंगे। यह देश भर में पाया जाता है और मनुष्य का एक पुराना सहचर है।

घरेलू कौआ (काग)
कॉरवस स्प्लेंडेंस: कॉरविडे

अधिकतर कौए काले होते हैं। मध्यम आकार के इस पक्षी की पूंछ उसके पंखों की तुलना में छोटी होती है जो पीठ की ओर गोलाई लिए होती है। इनकी चोंच मज़बूत होती है और इसके बीच तक सीधे तने हुए बाल होते हैं। घरेलू कौए की गर्दन, ऊपरी छाती, ऊपरी पीठ धूसर (भूरी) होती है जबकि शरीर के अन्य सब हिस्सों का रंग चमकीला काला होता है।

संबंधित प्रजातियां

भारत में कौए की चार स्थानीय प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें से दो – घरेलू कौआ और जंगली कौआ देश भर में हर जगह मिलते हैं। 'जैकडॉ' घरेलू कौए से काफी मिलता-जुलता

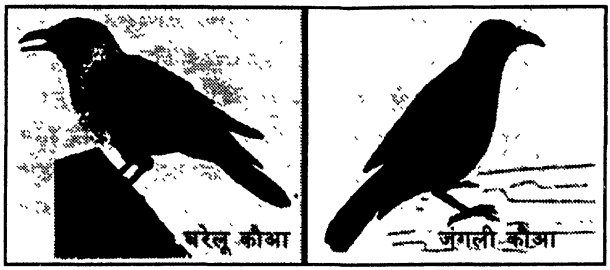

आमतौर पर हमारे आसापास आसानी से दिखाई दे जाने वाले कौओं में से एक घरेलू कौआ और जंगली कौआ। जिनके रंग-रूप में थोड़ा-सा फर्क होता है।

है, परन्तु इसका आकार कुछ छोटा, पीठ का हिस्सा कुछ कम भूरा और आंखों के आसपास सफेद छाप होती है। जैकडॉ को कश्मीर व उत्तरी पंजाब में ही देखा जा सकता है। जंगली कौए की घरेलू कौए से अलग पहचान यह होती है कि उसकी गर्दन व नीचे की छाती पर बिल्कुल भी भूरापन नहीं होता। चौथी जाति 'रैवेन' है, यह ज ली कौए से मिलता-जुलता है परन्तु आकार में उससे बड़ा होता है और जंगली कौए की तरह कांव-कांव नहीं करता। 'प्रूक-प्रूक' की भारी-कर्कश आवाज़ इसे अलग पहचान देती है। रैवन सिर्फ पंजाब के कुछ हिस्सों, पश्चिमी राजस्थान व कच्छ में पाया जाता है। कौए की इन चारों प्रजातियों में नर व मादा एक जैसे होते हैं। बच्चे भी वैसे ही दिखते हैं परन्तु कम चमकीली पीठ (प्लुमेज) से पहचाने जा सकते हैं। देश के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में कौए की दो अतिथि प्रजातियां भी दिखती हैं। इन्हें सिर्फ जाड़े में देखा जा सकता है। जंगली कौए की सी शक्ल वाले इन मेहमानों को 'रुक' और 'कैरिअन' के नाम से जाना जाता है।

वितरण

घरेलू कौए की चार उपजातियां हैं जो काश्मीर, उत्तरी पंजाब, श्रीलंका, मालदीव तथा म्यांमार के पश्चिमी हिस्से को छोड़कर तटीय व दक्षिणी ईरान सहित पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में सब जगह पाई जाती हैं। जांजीबार, मॉरीशस और अदन में भी इन्हें लाया गया और ये वहां भी बस गए हैं।

इन प्रजातियों की वितरण सीमाओं के आसपास कौओं के वितरण का अध्ययन करने पर, विद्यार्थियों को उन कारकों को ढूंढने का एक अभूतपूर्व मौका मिल सकता है जो कौओं की चारों प्रजातियों की आबादी पट्टियां

का निर्धारण करते हैं। मसलन पश्चिमी राजस्थान में कितनी कम वर्षा होने पर जंगली कौए को विस्थापित कर रैवेन पाया जाएगा। ऐसा ही उदाहरण घरेलू कौए की केरल में बसी उप-प्रजातियों में है, यहां पर सीलॉन उपप्रजाति कार्वस स्प्लेंडेन्स स्प्लेंडेन्स को विस्थापित कर देती है। इन दोनों उपप्रजातियों में अंतर यह है कि सीलॉन उपप्रजाति की गर्दन, ऊपरी छाती और ऊपरी पीठ के पंख गहरे भूरे होते हैं।

कर्नाटक व केरल सीमा पर इन दोनों उपप्रजातियों के बीच उत्तरी सीमा रेखा और पश्चिमी घाट में केरल व तमिलनाडु की सीमा पर पूर्वी सीमा रेखा खींचना व उसका अध्ययन करना एक रोचक गतिविधि हो सकती है। यह सीमा रेखा कितनी स्पष्ट है? क्या इन दोनों सीमाओं के आसपास ऐसे हिस्से भी हैं जहां दोनों उपप्रजातियां पाई जाती हैं और इनमें आपस में प्रजनन होता है? इस तरह के सवालों को ध्यान में रखकर जीव विज्ञान के छात्र-शिक्षक और शौकिया पक्षी प्रेमी इन क्षेत्रों का व्यवस्थित अवलोकन करें तो महत्वपूर्ण व रोचक वैज्ञानिक जानकारियां हासिल हो सकती हैं।

पर्यावास का चुनाव

घरेलू कौआ मनुष्य का सहभोजी है। जहां आदमी का बसेरा है घरेलू कौआ वहां मौजूद होता है। वह शहर व महानगर में तो बहुतेरी संख्या में मनुष्य की आबादी के साथ-साथ पाया ही जाता है, परन्तु अगर मनुष्य रहने के लिए जंगल और रेगिस्तान का चुनाव करता है तो कौआ वहां भी जाकर बस जाता है।

जंगली कौआ अपमार्जन (मुर्दाखोर, स्केवेंजर) की भूमिका में शहरी बसाहटों में भी पहुंच जाता है, लेकिन उसका असली बसेरा जंगल ही है। परन्तु पेड़-पौधों से भरे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलोर के परिसर में घेरलू कौओं की अपेक्षा जंगली कौओं की बहुलता है।

चूंकि इन दोनों प्रजातियों की बसाहट भारत के समस्त प्रायद्वीपीय इलाके में साथ-साथ देखी गई है इसलिए जहां ग्रामीण-शहरी-जंगली इलाके एक-दूसरे में बदलते हैं, ऐसे क्षेत्रों में इनके अनुपातों व फैलाव का अध्ययन रुचिकर होगा। क्या मनुष्य की बसाहट की कोई सीमा है जिससे घनी बसाहट होने पर जंगली कौआ अपना स्थान घरेलू कौए को दे देता है? और क्या यह सीमा देश भर में वही है यानी स्थाई है?

जनसंख्या, प्रवास व भ्रमण

हमें अभी तक भी इन पक्षियों के घनत्व और इनके भ्रमण पैटर्न के बारे में स्पष्ट रूप से पता नहीं है। लेकिन

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि हिमालय के इलाके को छोड़ दें जहां ये गर्मियों में ऊंचाई पर चले जाते हैं और ठंड में नीचे उतर आते हैं – घरेलू कौआ अपना पूरा जीवन एक ही इलाके में बिताता है। इसलिए अगर वे एकदम स्थानीय पक्षियों में से एक हैं फिर भी कौए शायद रोज़ाना एक खासी दूरी तय करते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि वे कुछ सीमित इलाकों में ही अपने घने झुंड के साथ रात बिताते हैं परन्तु दिन में वे भोजन की तलाश में अलग-अलग इलाकों में फैल जाते हैं। कौओं के अलावा सामुदायिक बसेरे की खासियत कई अन्य सामान्य पक्षियों जैसे कि भारतीय मैना, तोता, हरे पत्रिंगा और बगुलों में भी होती है। कई प्रजातियां तो अपना बसेरा एक-दूसरे के साथ-साथ रखती हैं।

इसका एक उदाहरण इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के परिसर में मुख्य इमारत के पास के घने वृक्षों पर देखने को मिलता है जहां भारतीय मैना, जंगली मैना, घरेलू और जंगली कौए झुंडों में साथ-साथ रहते हैं यानी रात को सोते हैं। और यह उनका परंपरागत बसेरा रहा है – कम-से-कम 1973 से जब मैंने इस संस्थान में काम करना शुरू किया। उन दिनों इस समूह में ब्राह्मणी मैना भी दिखती थी जो अब संभवतः कीटनाशकों के अतिशय प्रयोग के चलते लुप्त हो गई।

पक्षियों का सामुदायिक बसेरा और उनकी रोज़ की उड़ान जीव विज्ञान के छात्रों और शौकिया पक्षी प्रेमियों के लिए विज्ञान में योगदान का बेहतरीन मौका उपलब्ध कराते हैं। घरेलू कौए जैसी प्रजाति के बसेरे बिल्कुल स्पष्ट और निश्चित होते हैं। इन इलाकों को आसानी से पहचाना जा सकता है। इन बसेरों के अवलोकन से उन पक्षियों की गिनती भी की जा सकती है क्योंकि शाम ढलने पर हरेक दिशा से पक्षियों का लौटना तय होता है। इसके लिए बसेरे का घेरा बनाकर आठ से दस लोगों को बैठना भर होता है। हां, यह स्पष्ट होना चाहिए कि किन जगहों के बीच के पक्षियों की गिनती कौन कर रहा है। कुछ पक्षी अवश्य ही बसेरे में आने से पहले इधर-उधर मंडराते हैं लेकिन यह कोई ज़्यादा परेशानी की बात नहीं है। दो-तीन बार अपनी गिनती को दोहराकर हम सांख्यिकीय घटबढ़ का ज़िक्र करते हुए, उनकी संख्या का काफी सटीक अनुमान लगा सकेंगे।

भारत में पक्षियों की संख्या, विभिन्न इलाकों में उनकी आबादी का घनत्व, उनके आवास व सालभर के दौरान उनकी संख्या में बदलाव के बारे में बहुत निश्चित जानकारी नहीं है। जो सीमित जानकारी है वह पानी के स्रोतों के किनारे पंहुचने वाले प्रवासी पक्षियों के मामले में ही है। जबकि

पक्षियों के सामुदायिक बसेरों की गिनती के ज़रिए उनकी संख्या व अन्य जानकारियां हासिल की जा सकती हैं; ऐसी जानकारियां जो पक्षियों की आबादी की पारिस्थितिकी समझने में नए योगदान दे सकती हैं। जीव विज्ञान के विद्यार्थी, शिक्षक और अन्य पक्षी प्रेमियों के लिए यह कोई मुश्किल काम नहीं है। अभी तक पक्षी-संख्या-पारिस्थितिकी पर जो भी भरोसेमंद आंकड़े हैं वे ठंडे प्रदेशों के अध्ययन पर आधारित हैं इसलिए यहां पर हमारा अध्ययन नई वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करने में मददगार हो सकता है। यह पक्षियों के संरक्षण संबंधी मुद्दे में भी सहायक होगा, मसलन कीट भक्षी ब्राह्मणी मैना की संख्या में कमी को समझना।

सामुदायिक बसर के फायदे

आप लोगों के साथ मैं अपना एक अनुभव बांटना चाहता हूं, यह जताने के लिए कि कैसे एक साधारण से अवलोकन से विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकल सकते हैं। 1971-72 के दौरान पूना के फिल्म व टेलीविज़न संस्थान के परिसर में मैंने भारतीय मैना, जंगली कौए और घरेलू कौओं के मिले-जुले सामूहिक बसेरों का कई महीनों तक लगातार अवलोकन किया। मेरे मन में बरबस यह जिज्ञासा होती थी कि ऐसे सामूहिक बसेरे का फायदा क्या हो सकता है। यह सुझाया जाता रहा है कि प्रचुर भोजन के स्रोतों के बारे में सूचनाओं का आदान-प्रदान एक फायदेमंद कारण हो सकता है। इसलिए जिन पक्षियों को पिछले दिन भोजन के अच्छे स्रोत मिल गए हों वे अगले दिन तड़के ही भोजन के नए ठिकाने की ओर जल्दी से उड़ चलते हैं। पिछले दिन जिन पक्षियों को पर्याप्त भोजन नहीं मिला था वे इनके पीछे-पीछे चल पड़ते हैं।

परन्तु इस कारण से इस बात का कोई जवाब नहीं मिलता कि अलग-अलग खाद्यरुचियों वाली प्रजातियां साथ-साथ क्यों रहती हैं – मसलन घरेलू कौए और जंगली मैना सामुदायिक बसेरे में साथ-साथ क्यों रहते हैं। तो संभवतः हम शिकारियों के चंगुल में फंस जाने का खतरा कम होने के कारण की तरफ बढ़ सकते हैं क्योंकि सामूहिक बसेरे यानी बड़े झुंड में इस खतरे के प्रति सजग रहने का एक ज़्यादा कारगर तंत्र बन सकता है।

अपने इस अवलोकन के दौरान एक दिन अचानक मैंने यह नोट किया कि जंगली व घरेलू कौए का झुंड, मैना के झुंड को पीछे छोड़कर 300 मीटर दूर एक पेड़ पर जाकर जम गया। चार दिन बाद मैना का झुंड भी कौओं के बसेरे में जा मिला। इससे समझ में

आया कि मिले-जुले सामुदायिक बसेरे केवल इस वजह से नहीं होते क्योंकि इसके लिए उपयुक्त जगहें कम मिलती हैं; बल्कि इसलिए क्योंकि ऐसा करने से शिकारी के चंगुल में फंसने का खतरा कम हो जाता है। चूंकि कुछ वैज्ञानिकों ने इस दूसरी संभावना को नकार दिया था, इसलिए मेरे इन साधारण अवलोकनों के आधार पर पक्षियों की एक जानी-मानी पत्रिका 'इबिस' में एक रुचिकर पर्चा छप पाया।

दैनिक (जैविक लय)

घरेलू कौओं के सामूहिक बसेरे के अध्ययन से उनकी जैविक लय (बायोलोजिकल रिधम) को समझने जैसे अनेक मज़ेदार वैज्ञानिक प्रश्नों की तरफ बढ़ा जा सकता है। कौए अपने बसेरों से तड़के छोटे-छोटे समूहों में जल्दी से रवाना हो जाते हैं। शाम को वे बिखरे-बिखरे समूहों में एक-एक करके देर तक आते रहते हैं। यह सवाल कोई पूछ सकता है कि क्या उनका सुबह निकलना और शाम को लौटना एक निश्चित समय से तय होता है – क्या वे जून की अपेक्षा दिसंबर में सुबह अधिक अंधेरा रहते ही निकल जाते हैं? या फिर कि सूर्योदय व उनके रवाना होने के समय में कुछ निश्चित संबंध होता है – क्या वे जून की बनिस्बत दिसंबर में सुबह कुछ देर से निकलते हैं। अथवा उनके निकलने का समय प्रकाश की किसी निश्चित तीव्रता से संबंधित है – अगर ऐसा है तो क्या वे जून में भी बादल वाले और खुले दिनों में अलग-अलग समय पर निकलते हैं। घोंसला बनाने की उनकी प्रक्रिया सामूहिक बसेरे को किस तरह प्रभावित करती है? अंडे अथवा चूज़े का रख-रखाव करते समय क्या नर और मादा दोनों पक्षी रात को घोंसले में रहते हैं या उनमें से कोई एक? इस तरह के अनेकों सवालों को सही उत्तर का इंतज़ार है।

सामाजिक व्यवहार

कौआ बेहद सामाजिक पक्षी है। उसे हमेशा जोड़े में, छोटे-बड़े समूहों में देखा जा सकता है। बड़ी संख्या में सामुदायिक बसेरे में रहना भी इसी का प्रमाण है। लेकिन घोंसला वह अलग-अलग ही बनाता है। फिर भी हम इस परिचित पक्षी के सामान्य व्यवहार के बारे में बहुत से साधारण तथ्य नहीं जानते। आधिकारिक 'हैंडबुक ऑफ बर्डस ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान' के मुताबिक वह आजीवन अपना जोड़ा नहीं बदलता। साथ ही उसमें लिखा है कि समागम करते हुए कौओं के पास अक्सर दूसरे कौओं की भीड़ इकट्ठी हो जाती है व उन पर वे हल्ला बोल देते हैं। ऐसे में इस बात का भी पारिस्थितिक प्रमाण मिलता है कि संभोग के दौरान उनमें काफी

अदला-बदली होती रहती है। ये दोनों ही तथ्य परस्पर विरोधी हैं, इसलिए यह पता करना रुचिकर होगा कि क्या कौए जीवन भर एक ही जोड़ा बनाए रखते हैं।

संवाद/संचार/संप्रेषण

चालाक, सामाजिक और मिलन-सार घरेलू कौए आपस में लगातार गपशप करते रहते हैं। वे या तो तीखी आवाज़ में क्वा-क्वा अथवा अनुनासिक ध्वनि में कांव-कांव करते रहते हैं। इसके अलावा वे अलग-अलग मौकों पर बहुत सारी अन्य ध्वनियां निकालते हैं। जब वे आराम कर रहे हों तो उस वक्त वे संगीतमय ढंग से कुर्र...–कुर्र... करते हैं। धीमी क्री-क्री-क्री की आवाज़ इसका संकेत है कि मादा सहवास की तैयारी में है। सालिम अली बताते हैं कि सामूहिक बसेरों में रात को अचानक एक खूब लंबी-सी 'काव' की आवाज़ आती है, जो सामान्यत: दिन में कभी भी नहीं सुनाई देती – शायद कौआ कोई बुरा सपना देख रहा होगा! यानी कि कौओं की विभिन्न तरह की बोलियों को रिकॉर्ड करना व उनके अर्थ पता लगाने जैसे काम की भी संभावना है। उदाहरण के लिए भोजन की जगह की सूचना लेने-देने में कौए बहुत ही मुस्तैद होते हैं।

बारिश शुरू होने पर जब पंखवाली चींटियां या दीमक हज़ारों की संख्या में अपने बिलों से बाहर आती हैं तो दसियों तो क्या सैकड़ों कौओं को इस समृद्ध भोजन स्रोत के पास इकट्ठा होने में बमुश्किल दस मिनट का समय लगता है। क्या भोजन स्रोत पता लगने पर कोई विशेष आवाज़ लगाई जाती है? अथवा उड़ान के विशेष तरीकों/पैटर्न से ऐसी सूचनाएं संप्रेषित की जाती हैं?

घरेलू कौए गज़ब के कलाबाज़ होते हैं। शहरी इलाकों में शाम को विशेष तौर पर जब तेज़ हवा चल रही हो तो वे अक्सर किसी ऊंचे पेड़ पर या ऊंची इमारत पर जमा हो जाते हैं। फिर उनका विविध तरह का खेल शुरू होता है मसलन – मौके का तकाज़ा देखते हुए किसी विशेष जगह पर कब्ज़ा जमाने की कोशिश, कलाबाज़ियों में एक-दूसरे को मात देने की कोशिश – पंख सिकोड़कर आकाश में तेज़ी से डाइव लगाना या एकदम झटके से मुड़ कर ऊपर की ओर उठ जाना। मोड़ लेने, करवट लेकर गिरने, कलाबाज़ी खाने, गोल-गोल घूमने जैसी उड़ानों के करतब में वे एक-दूसरे से होड़ करते हैं। क्या उनकी इस तरह की हरकतों का कोई खास मतलब होता है, उदाहरण के लिए अपने संगी के चुनाव में? क्या घोंसला बनाने के मौसम में उनकी आवाज़ उत्तरोतर ऊंची होती जाती है? ऐसे अनेकों सवाल हैं जिनके उत्तर आने बाकी हैं।

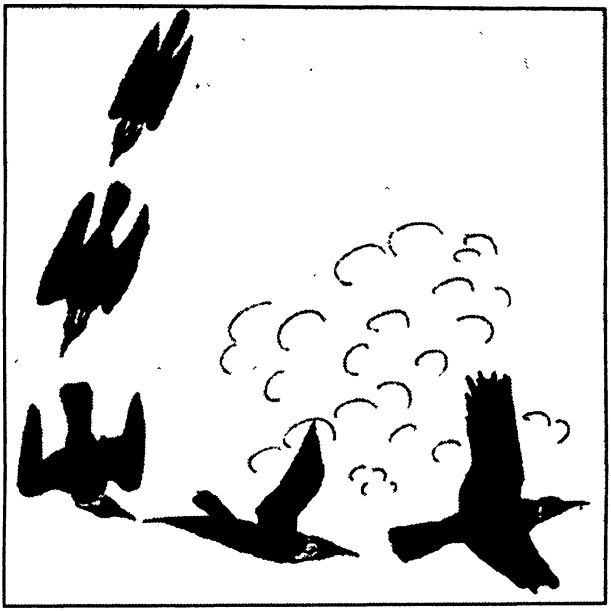

अक्सर शाम के समय आप कौओं को आसमान में आपसी दांव-पेच लगाते, कलाबाज़ी लगाते देख सकते हैं। इसमें गोल-गोल घूमना, तीर की तरह नीचे आना, गोते लगाना, ऊपर उठना आदि शामिल हैं।

हुल्लड़बाजी/हुड़दंगबाजी

जंगली और घरेलू दोनों किस्म के कौए अक्सर बिल्लियों, उल्लुओं, चीलों व गुलेलधारी बच्चों के पीछे पड़ जाते हैं व उन्हें परेशान करते हैं। ऐसा ही कुछ वे उनके घोंसले पर आश्रित परजीवी कोयल के साथ भी करते हैं। सच तो यह है कि कौओं का काफी समय इस तरह की हुल्लड़बाजी में बीतता है। उनके समय का लेखा-जोखा निकालकर यह मूल्यांकन करना रोचक होगा कि उनका कितना समय और ऊर्जा इस तरह की धींगामस्ती में जाते हैं। विकासवादी जीव वैज्ञानिकों का मानना है कि समय व ऊर्जा का इस्तेमाल इस तरह से होता है कि कोई भी प्राणी अपनी 'जीन्स' की अधिकाधिक प्रतिकृतियां छोड़ कर जाए।

अगर ऐसा है तो कौओं को चील को सताकर क्या मिलता होगा जबकि वे उसकी शिकारी भी नहीं हैं। संभवतः मनुष्य के आश्रय के लिए चील को कौए प्रतिद्वंद्वी समझते हैं और इस तरह उन पर हल्ला बोलकर शायद

कौए इस स्रोत का अपना हिस्सा बढ़ाने की कोशिश करते होंगे। इस तरह की परिकल्पना ज़रूर जांचने-परखने लायक हो सकती है।

घोंसला/घरोंदा

कौए अक्सर अप्रैल से जून के बीच घोंसला बनाते हैं। स्थान विशेष के अनुसार यह सीमा मार्च से अगस्त तक भी हो सकती है। इनके घोंसला बनाने की अग्रिम सूचना कोयलों की कुहू-कुहू से मिलती है। कोयल कौए की घोंसला-परजीवी है। इस काम के लिए वह घरेलू कौओं को अपना शिकार बनाती है।

कौए आम या किसी ऐसे ही उपयुक्त वृक्ष की दो टहनियां जहां मिलती हैं उनके बीच ज़मीन से लगभग तीन मीटर की ऊंचाई पर घोंसले बनाते हैं। अगर घोंसला मुंबई जैसे शहर में बन रहा हो तो कौआ टहनियों और डंठलों के बदले लोहे के तार और कीलों का इस्तेमाल करता है। एक बार में मादा चार से पांच अंडे देती है। नर और मादा दोनों ही बराबरी से बच्चों की देखभाल करते हैं। कौए का घोंसला आसानी से पहचान में आ जाता है और प्रजनन व्यवहार अध्ययन करने का अनूठा मौका देता है। कुछ अन्य घोंसला परजीवियों के संदर्भ में हुए अध्ययन यह दर्शाते हैं कि इस तरह के परजीवी से मेज़बान को फायदा होता है क्योंकि वे चूज़ों के शरीर पर आ चिपकने वाले अन्य परजीवियों से रक्षा करते हैं। कोयल की कौए पर की यह परजीविता निश्चित रूप से गहन जांच की मांग करती है।

चील, उल्लू, कोयल और गुलेलधारी बच्चों की जान पर बन आती है जब कभी कौओं का झुंड आक्रमक हो उठता है।

मिथ और यथार्थ

मैंने यह आलेख जानबूझकर इस स्तंभ के मानक प्रारूप में नहीं लिखा है क्योंकि मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि ये सर्वव्यापी, सहजता से उपलब्ध जैव प्रजातियां वैज्ञानिक अध्ययन के कितने सारे मौके उपलब्ध कराती हैं। हालांकि मैंने इस खज़ाने को छुआ भर है। अगर कोई ढूंढने की शुरुआत करे तो अध्ययन के बीसियों आयाम हैं। फिर भी बचपन में अपने आस-पास के सर्वाधिक स्थाई साथी/सखा कौए के बारे में कितनी सारी अजीबोगरीब/विचित्र कथाएं हम सब सुनते हैं। मराठी की नर्सरी कक्षाओं में अपने काले रंग से दुखी कौए की कविता है। इसमें कौआ बर्फ जैसे सफेद रंग के बगुले से ईर्ष्या करता है। ईर्ष्यावश वह साबुन खरीदता है व अपनी देह को इतना रगड़ता है कि लहूलुहान हो जाता है और अंततः उसकी मौत हो जाती है। जबकि सच्चाई यह है कि कौआ बगुलों के लिए एक संकट है। वह बगुलों के प्रजनन स्थलों पर हमला करके उनके अंडों और बच्चों का बेधड़क शिकार करता है। शर्मसार होने के बजाए यह गुस्ताख चिड़िया पूरे आत्मविश्वास से यह कहती जान पड़ती है कि – काला रंग सुंदर है (ब्लैक इज़ ब्यूटीफुल)।

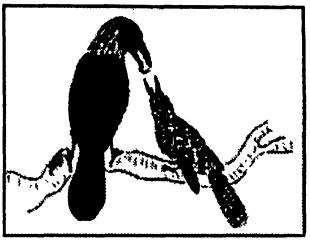

अब इसे कौए का भोलापन कहें या नेकनीयत। लेकिन वो कोयल के बच्चों की देखभाल भी करता है।

माधव गाडगिल: 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस', बैंगलोर में पारिस्थितिकी विज्ञान में शोध करते हैं। इससे संबंधित विषयों पर उन्होंने कई पुस्तकें व लेख लिखे हैं।

प्रोजेक्ट लाइफस्केप के संबंध में अन्य जानकारी और प्रोजेक्ट में सहयोग के बारे में जानकारी माधव गाडगिल से प्राप्त की जा सकती है। उनका पता है: सेंटर फॉर इकोलॉजिकल साइंसेज, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बेंगलोर, 560012

ईमेल: madhav@ces.iisc.ernet.in

यह लेख इसी संस्थान से प्रकाशित पत्रिका 'रेज़ोनेन्स' के फरवरी, 2001 अंक में लिया गया है।

चित्र: के. ए. सुब्रह्मण्यन।

अनुवाद: लाल बहादुर ओझा। एकलव्य के भोपाल केन्द्र पर प्रकाशन संबंधी संपादकीय समूह के सदस्य हैं।